वीर संवत २४९२, माघ शुक्ल १२, बुधवार

दि.२-२-१९६६, गाथा ४, ५ प्रवचन नं.-१५

'दौलतरामजी' कृत (छहढ़ाला की तीसरी ढ़ाल की) चौथी गाथा का भावार्थ है। अधिकार क्या चलता है ? कि यह आत्मा, शरीर और पुण्य-पाप के राग से भिन्न (है)। ऐसे आत्मा की श्रद्धा-निश्चयसम्यग्दर्शन होता है, उसे इस व्यवहार सम्यग्दर्शन का नव तत्त्व के भेदवाला विषय उसे श्रद्धा में होता है। पुण्य-पाप के शुभ-अशुभभाव से और कर्म, शरीर से रहित निश्चय आत्मा का भान होता है, परद्रव्य से भिन्न-उसमें यह सब आ गया। आत्मा शुद्ध निर्विकल्प आनन्द की अन्तरदृष्टि अनुभव की होती है, उसे निश्चयसम्यग्दर्शन - सच्चा सम्यग्दर्शन कहा जाता है। उसे यह सात तत्त्वों के भेदवाली श्रद्धा (होती है), उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा जाता है। यह व्यवहार सम्यग्दर्शन की व्याख्या चलती है।

'**भावार्थ - जीव (आत्मा) तीन प्रकार के हैं - (१) बहिरात्मा, (२) अन्तरात्मा, (३) परमात्मा।**' यह व्यवहार समकित के विषय की बात चलती है। व्यवहार समकित में, बहिरात्मा कैसा होता है ? - उसे भलीभाँति जानना चाहिए। (जो) शरीर और राग को अपना स्वरूप मानता है, वह बहिरात्मा-मिथ्यादृष्टि-अज्ञानी है, उसे उस प्रकार से जानना चाहिए। बाद में आगे कहेंगे - ऐसा बहिरात्मस्वरूप जानकर, उसे जानकर हेय करना चाहिए। समझ में आया ? जो कोई शरीर की क्रिया को आत्मा माने; राग-दया, दान, व्रतादि के शुभाशुभभाव को आत्मा माने, उसने जड़ को, विकारी को ही आत्मा माना है, वह बहिरात्म बुद्धि-मिथ्यादृष्टि हैं। उस मिथ्यादृष्टि के भाव को जानकर तजना - ऐसा आगे आयेगा। उसे जानकर बहिरात्मभाव छोड़ना।

अन्तरात्मा और परमात्मा। जैसे इस शरीर और आत्मा को एक मानता है, वह बहिरात्मा है। '**उसे अविवेकी अथवा मिथ्यादृष्टि भी कहते हैं।**' तत्त्वमूढ़ा कहा था न ? जिसे आत्मा

आनन्दस्वरूप का ज्ञान (नहीं) है; रागादि दु:खरूप, शरीरादि पररूप है – ऐसा जिसे अन्तर में भान नहीं और पर को अपना स्वरूप मानता है, उसे बहिरात्मा कहते हैं।

'जो शरीर और आत्मा को अपने भेदविज्ञान से भिन्न-भिन्न मानते हैं...' अपना आत्मस्वभाव शुद्ध परम आनन्द है; पुण्य-पाप का भाव विकार है; कर्म-शरीर अजीव-जड़ है – ऐसा जड़ से, विकार से आत्मा को भिन्न अनुभव करते हैं, भिन्न जानते हैं, उन्हें अन्तरात्मा-सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। समझ में आया ? उस **'अन्तरात्मा के तीन भेद हैं...'** उस अन्तरात्मा के तीन प्रकार हैं। **'उत्तम-मध्यम और जघन्य। उनमें अन्तरंग और बहिरंग दोनों प्रकार के परिग्रह से रहित...'** एकदम दिगम्बर हो, जिन्हें बाह्य वस्त्रादिक का कुछ भी परिग्रह नहीं हो; अभ्यन्तर परिग्रह भी नहीं हो। यहाँ सातवे गुणस्थान की बात है। शुद्धोपयोग लिया है न ?

मुमुक्षु :- व्यवहार तत्त्व मात्र जानना...

उत्तर :- अकेला व्यवहार शून्य कहलाता है। निश्चय आत्मा अन्तरात्मा शुद्ध स्वरूप निर्विकल्प, रागरहित, उसके अन्तर निश्चयसम्यग्दर्शन बिना उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता। (-ऐसा कहते हैं कि) व्यवहार सम्यग्दृष्टि को जघन्य कहा जाता है या नहीं ?

आत्मा अन्तर निराकुल आनन्दस्वरूप की सत्ता का स्वभाव अर्थात् कर्म, शरीर ये अजीव हैं, इनसे भिन्न और पुण्य-पाप का भाव आस्रवभाव है, उनसे स्वभाव भिन्न है। अजीव से जीवतत्त्व भिन्न और विकारीभाव से उसका शुद्ध स्वभाव भिन्न है – ऐसे अन्तर आत्मा में अन्तरदृष्टि, निर्विकल्प अनुभवज्ञान में हुए बिना इसे निश्चयसम्यग्दर्शन-सच्चा सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता। समझ में आया कुछ ? और सच्चे सम्यग्दर्शन बिना उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता। सच्चे में (निश्चयसम्यग्दर्शन सहित) व्यवहार सम्यग्दर्शनवाला अन्तरात्मा को (अर्थात्) बाह्य (अभ्यन्तर) परिग्रह रहित शुद्धोपयोगी जीव है, उसे उत्तम अन्तरात्मा (मानता है)। व्यवहार समकिती, निश्चय सम्यग्दृष्टि सहित ऐसे को – शुद्धोपयोगी जीव को उत्तम अन्तरात्मा मानता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- किसे ? व्यवहार होता नहीं, फिर प्रश्न कहाँ है ? जघन्य, मध्यम व्यवहार की बात ही नहीं है।

यहाँ तो आत्मा के भानपूर्वक के शुद्ध के तीन प्रकार हैं। व्यवहार समकितवाला ऐसा मानता है। व्यवहार समकित (सहित) निश्चय समकित तो है। व्यवहार में मानता है तो क्या आपत्ति है ? - ऐसा वह कहता है... परंतु व्यवहार में माने क्या ? पर को... पर के स्वरूप को व्यवहार में माने क्या ? कि जिसे शुद्धोपयोगरूपी आत्मध्यान, ज्ञान वर्तता है, उसे वह मध्यम अन्तरात्मा रूप से व्यवहार से परद्रव्य है, इसलिए उसे माने। समझ में आया ?

'**अन्तरंग और बहिरंग - ऐसे दो प्रकार के परिग्रह रहित...**' अन्तर आत्मा में तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव और आत्मा का ध्यान, आनन्द जिसे प्रकट हुआ है; बाहर में वस्त्र का तंतु-धागा भी नहीं - ऐसे '**सातवें से बारहवें गुणस्थान में वर्तते शुद्धोपयोगी और...**' आत्मध्यान में मस्त हैं, अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव में (मस्त हैं) - ऐसे '**दिगम्बर मुनि उत्तम अन्तरात्मा हैं।**' समझ में आया ? ऐसा सम्यग्दृष्टि-निश्चय सम्यग्दृष्टि जीव, व्यवहार समकित में ऐसे भेद को इस प्रकार से मानता और जानता है - ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! स्पष्ट ही है, भाई !

सम्यग्दृष्टि जीव को अपने आत्मा के शुद्धपने का भान अनुभव की दृष्टि में वर्तता है। ऐसा निश्चय सम्यग्दृष्टि जीव, व्यवहार समकित में अर्थात् शुभ विकल्प में, उस प्रकार के क्षयोपशम ज्ञान में (ऐसा जानता है)। समझ में आया ? वह अन्तरात्मा को ऐसा मानता है कि जो आत्मध्यान-ज्ञान में- आनन्दस्वरूप में लीन हैं; बाह्य दिगम्बर अवस्था है, अन्तर में आनन्द में- शुद्ध में लीन हो ये हैं, उन्हें व्यवहार समकित की श्रद्धा में उत्तम अन्तरात्मा के रूप में स्वीकार करता है। वहाँ से (सातवे से) लेकर बाहरवें गुणस्थान तक उत्तम अन्तरात्मा है - ऐसा व्यवहार समकित में, निश्चय सम्यग्दृष्टि स्वीकार करते हैं। कहो, यह तुमने वहाँ पढ़ा है या नहीं ? यह तो स्पष्ट बात हैं, हाँ ! बहुत स्पष्ट की है। शुद्धोपयोग में रमनेवाले दिगम्बर मुनि होते हैं। अन्तर शुद्धोपयोग आनन्दकन्द में रमनेवाले होते हैं, लीन होते है, वे सातवें से बारहवें (गुणस्थान) तक (होते हैं)। उन्हें उत्तम अन्तरात्मा कहा जाता है।

मध्यम और जघन्य अन्तरात्मा तथा सकल परमात्मा

मध्यम अन्तर-आतम हैं जे देशव्रती अनगारी;
जघन कहे अविरत-समदृष्टि, तीनों शिवमग-चारी।
सकल निकल परमातम द्वैविध तिनमें घाति निवारी;
श्री अरिहन्त सकल परमातम लोकालोक निहारी।।५।।

अन्वयार्थ :- (अनगारी) छठवें गुणस्थान के समय अन्तरंग और बहिरंग परिग्रह रहित यथाजातरूपधर-भावलिंगी मुनि मध्यम अन्तरात्मा हैं तथा (देशव्रती) दो कषाय के अभाव सहित ऐसे पंचम गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि श्रावक (मध्यम) मध्यम (अन्तरआतम) अन्तरात्मा (हैं) हैं और (अविरत) व्रतरहित (सम्यग्दृष्टि) सम्यग्दृष्टि जीव (जघन) जघन्य अन्तरात्मा (कहे) कहलाते हैं; (तीनों) यह तीनों (शिवमगचारी) मोक्षमार्ग पर चलनेवाले हैं। (सकल निकल) सकल और निकल के भेद से (परमातम) परमात्मा (द्वैविध) दो प्रकार के हैं (तिनमें) उनमें (घाति) चार घातिकर्मों को (निवारी) नाश करनेवाले (लोकालोक) लोक तथा अलोक को (निहारी) जानने-देखनेवाले (श्री अरिहन्त) अरहन्त परमेष्ठी (सकल) शरीरसहित (परमातम) परमात्मा हैं।

भावार्थ :- (१) जो निश्चयसम्यग्दर्शननादि सहित हैं; तीन कषाय रहित, शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म को अंगीकार करके अंतरंग में तो उस शुद्धोपयोगरूप द्वारा स्वयं अपना अनुभव करते हैं, किसी को इष्ट-अनिष्ट मानकर राग-द्वेष नहीं करते, हिंसादिरूप अशुभोपयोग का तो अस्तित्व ही जिनके नहीं रहा है - ऐसी अन्तरंगदशा सहित बाह्य दिगम्बर सौम्यमुद्राधारी हुए हैं और छठवें प्रमत्तसंयत गुणस्थान के समय अट्ठाईस मूलगुणों का अखण्डरूप से पालन करते हैं वे, तथा जो अनन्तानुबन्धी एवं अप्रत्याख्यानीय ऐसे दो कषाय के अभाव सहित सम्यग्दृष्टि श्रावक हैं वे मध्यम अन्तरात्मा हैं अर्थात् छठवें और पाँचवे गुणस्थानवर्ती जीव मध्यम अन्तरात्मा हैं।*

---

* सावयगुणेहिं जुत्ता, परत्तविरदा य मज्झिमा होंति।
श्रावकगुणैस्तु युक्ता: प्रमत्तविरताश्च मध्यमा: भवन्ति।।

(२) सम्यग्दर्शन के बिना कभी धर्म का प्रारम्भ नहीं होता; जिसे निश्चयसम्यग्दर्शन नहीं है वह जीव बहिरात्मा है।

(३) पमरात्मा के दो प्रकार हैं - सकल और निकल। (१) श्री अरिहंतपरमात्मा वे [१]सकल (शरीरसहित) परमात्मा हैं (२) सिद्ध परमात्मा वे [२]निकल परमात्मा हैं, वे दोनों सर्वज्ञ होने से लोक और अलोक सहित सर्व पदार्थों का त्रिकालवर्ती सम्पूर्ण स्वरूप एक समय में युगपत् (एकसाथ) जानने-देखनेवाले, सबके ज्ञाता दृष्टा हैं, इससे निश्चित होता हैं कि - जिसप्रकार सर्वज्ञ का ज्ञान व्यवस्थित है, उसीप्रकार उनके ज्ञान के ज्ञेय-सर्वद्रव्य-छहों द्रव्यों की त्रैकालिक क्रमबद्ध पर्यायें निश्चित-व्यवस्थित हैं; कोई पर्याय उल्टी-सीधी अथवा अव्यवस्थित नहीं होती, ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव मानता है। जिसकी ऐसी मान्यता (-निर्णय) नहीं होती उसे स्व-पर पदार्थों का निश्चय न होने से शुभाशुभ विकार ओर परद्रव्य के साथ कर्ताबुद्धि-एकताबुद्धि होती ही है। इसलिये वह जीव बहिरात्मा है।

अब, **'मध्यम और जघन्य अन्तरात्मा और सकल परमात्मा।'**

मध्यम अन्तर-आतम हैं जे देशव्रती अनगारी;
जघन कहे अविरत-समदृष्टि, तीनों शिवमग-चारी।
सकल निकल परमातम द्वैविध तिनमें घाति निवारी;
श्री अरिहन्त सकल परमातम लोकालोक निहारी।।५।।

'(अनगारी) छठवे गुणस्थान के समय अन्तरंग और बहिरंग परिग्रह से रहित...' सच्चे मुनि कैसे होते हैं ? कि अभ्यन्तर में तो आनन्दादि का अनुभव तीन कषाय रहित हुआ हो

अर्थ : श्रावक के गुणों से युक्त और प्रमत्तविरत मुनि मध्यम अन्तरात्मा हैं।
(स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा - १९६)

१ **म = सहित, कल = शरीर; सकल अर्थात् शरीरसहित।**
२ **नि = रहित, कल = शरीर; निकल अर्थात् शरीररहित।**

और बाहर में '**यथाजातरूपधर...**' जैसा माता ने (जन्म दिया) ऐसा नग्न दिगम्बर लिंग। अन्तर में तीन कषाय के अभाव का आनन्द सहित का अनुभव - ऐसे भावलिंगी मुनि मध्यम अन्तरात्मा हैं। ऐसे भावलिंगीमुनि मध्यम (अन्तरात्मा हैं)। उत्तम (अन्तरात्मा) सातवें से गिने हैं। इन छठवें और पाँचवें को मध्यमवर्ती कहते हैं। चौथे को जघन्य कहेंगे। कुछ समझ में आया ? अर्थात् चौथे से बारहवें तक अन्तरात्मा होते हैं। उनके तीन भेद किये हैं। सातवें से बारहवें तक उत्तम; छठवां और पाँचवां मध्यम; चौथा गुणस्थान जघन्य हैं। हैं तो तीनों मोक्षमार्गी - शिवमगचारी। आत्मज्ञानी जीव, दूसरे को सम्यग्दृष्टि चौथे (गुणस्थानवाले को) जघन्यरूप अंतरात्मा से व्यवहार समकित में उन्हें जानता है।

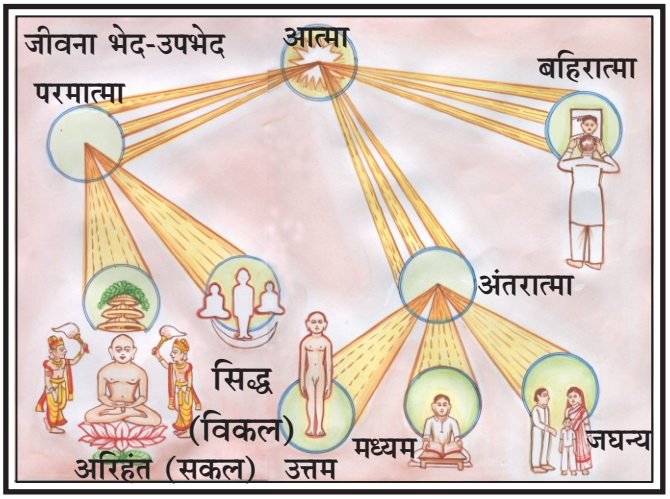

आत्मज्ञानी जीव, मुनि को - भावलिंगी सन्त को, तीन कषाय के अभाव का आनन्द, शान्ति प्रगटे हैं, बाहर में नग्न लिंग है परन्तु है शुभोपयोगी। शुभ विकल्प है, इसलिए उन्हें निश्चय आत्मज्ञानी मध्यम अन्तरात्मा के रूप में व्यवहार समकित में स्वीकार करता है। समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म, इसमें कितने पहलू याद रखने ?

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- सब एक है न ? अन्तरात्मा है न ? सब शुद्ध उपयोग में है न ? समझ में आया ?

'**तथा दो कषा के अभाव सहित...**' श्रावक। सच्चे श्रावक कैसे होते हैं ? आत्मा के अनुभव सहित जिसे दूसरे दो कषायों का अभाव होवे - ऐसे दो कषाय का अभाव अर्थात् अनन्तानुबन्धी और अप्रत्याख्यानी, उनका अभाव (होवे), उसे श्रावक कहते हैं। '**ऐसे पंचम**

गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि श्रावक (मध्यम) अन्तरात्मा है...' निश्चय सम्यग्दृष्टि जीव दूसरा पांचवें गुणस्थानवाला श्रावक, दो कषाय की अभाववाला; जिसे आत्मा की शान्ति प्रकट हुई है और बारह व्रत का विकल्प आदि होता है - ऐसे श्रावक को मध्यम अन्तरात्मा के रूप में व्यवहार समकित में जानता और मानता है। कहो, भाई ! तुम तीनों लोग यहाँ उपस्थित हो न ! कहो, इसमें समझ में आया ? यह तो निश्चय सहित व्यवहार में ऐसा माने तो व्यवहार कहलाता है और सामनेवाले को वह व्यवहार में ऐसा मानता है। सामनेवाले की ऐसी अवस्था होती है। सातवें से बारहवें गुणस्थान तकको उत्तम अन्तरात्मा माने; छठवेंवाले को शुभोपयोग में हो और अन्तर में तीन कषाय का अभाव है; आनन्द शुद्ध निश्चयसम्यग्दर्शन सहित है, उसे भी व्यवहार समकित में विकल्पादि होते हैं। ऐसे जीव को निश्चय-सम्यग्दृष्टि, व्यवहार समकित में मध्यम अन्तरात्मा के रूप में स्वीकार करता है। समझ में आया ? थोड़े में बहुत भरा है, हाँ ! 'दौलतराम'... 'दौलतराम' ! गृहस्थ थे, दिगम्बर गृहस्थ ! गागर में सागर छहढाला ! गागर में सागर भर दिया है। पहले के श्रावक भी एसे थे। ऊँचे श्रावक, ऊँचे धर्मात्मा भानवाले थे, हाँ ! आहा..हा..! क्या कहते हैं ?

'और व्रत रहित सम्यग्दृष्टि जीव...' जिसे जरा भी व्रत नहीं है, परन्तु निश्चय सम्यग्दृष्टि है - ऐसे अविरत सम्यग्दृष्टि को, निश्चय सम्यग्दृष्टि... निश्चय सम्यग्दृष्टि अर्थात् चौथे (गुणस्थान) वाला, पांचवेवाला, छठवेवाला, भाई ! लो ! फिर इसकी और से भेदवाला करना चाहिए न ? चौथे गुणस्थानवाला निश्चय सम्यग्दृष्टि, पाँचवेवाला निश्चय सम्यग्दृष्टि या छठवेवाला सम्यग्दृष्टि। सातवेंवाला शुद्धोपयोग में है - ऐसा निश्चय चौथे, पाँचवे और छठवें में (वर्तता) निश्चय सम्यग्दृष्टि जीव; जो चौथे, पाँचवे, छठवेवाला हो, वह व्यवहार में अविरति सम्यग्दृष्टि - जो व्रतरहित सम्यग्दृष्टि है, उसे जघन्य अन्तरात्मा के रूप में व्यवहार समकित में स्वीकार करता है। आहा..हा..! समझ में आया ?

छठवें गुणस्थानवाले मुनि हों, जिन्हें मध्यम अन्तरात्मा कहा, वे मुनि अपने आनन्द के शुद्धभाव में तीन कषाय रहित वर्तते हैं - ऐसे जीव दूसरे मुनि को शुद्धोपयोग-सातवें से बारहवें तकके को उत्तम अन्तरात्मा (के रूप में) स्वीकारते हैं। छठवें गुणस्थानवाले दूसरे मुनि हों, आतमध्यानी-ज्ञानी (हों), परन्तु वर्तमान में शुभ उपयोग में वर्तते हों, उन्हें मध्यम

अन्तरात्मा स्वीकारते हैं और समकिती व्रत रहित हों, उसे वे मुनि भी जघन्य अन्तरात्मा के रूप में स्वीकारते हैं। व्यवहार सम्यग्दर्शन में (ऐसा स्वीकारते हैं)। इसमें समझ में आता है या नहीं ? यह रात्रि में पूछे तो आयेगा या नहीं ? बराबर आयेगा, कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें ?

'**यह तीनों मोक्षमार्ग पर चलनेवाले हैं।**' सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में व्रत रहित हो, व्रत न हो, प्रत्याख्यान (त्याग) न हो परन्तु निश्चयसम्यग्दर्शन है, वह अविरति सम्यग्दृष्टि शिव-मोक्षमार्ग में है। देखो ! स्वयं शिवमार्ग में है, मोक्षमार्ग पर चलता है, भले अभी चारित्र नहीं है, तथापि मोक्षमार्ग में चलता है। वह मोक्षमार्ग में है; और राग को पुण्य को अपना माने, देहादिक को अपना माने, वह मिथ्यादृष्टि है, वह बन्धमार्ग में चलता है। ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव दूसरे बहिरात्मा को बन्धमार्ग में चलनेवाले को इसप्रकार बहिरात्मा (के रूप में) स्वीकार करता है। समझ में आया ? स्पष्टीकरण बहुत किया है।

परद्रव्य से भिन्न कहा था या नहीं ? ए.. देवानुप्रिया ! उसमें कहा था न ? फिर इन नौं की बात की है या नहीं ? उसके साथ इस तुलना से उन्होंने कहा है या नहीं ? यह तो हम जरा विस्तार करते हैं। भाई ! देखो !

यह आत्मा पुण्य-पाप के शुभ-अशुभरागरहित, देह रहित (है) - ऐसी आत्मा की निश्चय सम्यग्दृष्टि (सहित) जीव भी मोक्षमार्ग में है और गृहस्थाश्रम का त्याग करके कोई मुनि होकर बैठे, परन्तु बाह्य शरीर की क्रिया मेरी है और दया, दान का परिणाम मुझे लाभदायक है (-ऐसा मानता है तो) वह बहिरात्मा है। वह मोक्षमार्ग में नहीं; वह बन्धमार्ग में है। यह रत्नकरण्डश्रावकाचार में कहा है न ? गृहस्थों मोक्खमगो - वहाँ भी ऐसा कहा है, भाई ! आया, ठीक ! गृहस्थी भी मोक्षमार्ग में है। लो, इसके साथ रखा ! रत्नकरण्डश्रावकाचार का शब्द प्रयोग किया लगता है न ? समन्तभद्राचार्य ! गृहस्थ भी आत्मदृष्टि सहित... उसमें विशेषता तो यह लेंगे कि सम्यग्दृष्टि को क्या करना ? कि बहिरात्मा को जानकर तजना। तजना अर्थात् श्रद्धामें से छोड़ना। यह व्याख्या लेंगे। बाहर से छोड़ने-बोड़ने की व्याख्या नहीं। समझ में आया ?

जो जीव, पुण्य-पाप के भाव से धर्म माने... क्योंकि स्वभाव शुद्ध है, इसने अशुद्ध से (धर्म) माना... और जड़ को 'मेरा द्रव्य' माने तो द्रव्य और भाव दोनों की भूल है। ऐसा जो मिथ्यादृष्टि जीव बहिरात्मा बाह्य त्याग में वर्तता होवे.. समझ में आया ? और कदाचित् पंचमहाव्रत का विकल्प वर्तता हो, परन्तु वह बहिरात्मा है - मिथ्यादृष्टि है; बन्धमार्ग में वर्तता है। सम्यग्दृष्टि उसे ऐसा मानता है।

सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में व्रतरहित हों, बाह्य त्याग न हो, अन्दर आसक्ति का (चारित्रदोषरूप) तीन कषाय का भाव हो, तो भी चौथे गुणस्थानवाला सम्यग्दृष्टि, पाँचवेवाला, छठवेंवाला व्यवहार समकित में उसे मोक्षमार्गी है - ऐसा स्वीकार करता है। समझ में आया ?

चौथे गुणस्थानवाला शिवमार्गी, व्यवहार समकित में उस बहिरात्मा को बन्धमार्गी स्वीकार करता है और सम्यग्दृष्टि जीव को, मोक्षमार्गी है - ऐसा व्यवहार समकित में (स्वीकार करता है), क्योंकि परद्रव्य है न ? और पाँचवे गुणस्थानवाला धर्मात्मा दो कषाय के अभाववाले को मध्यम अन्तरात्मा के रूप में, मोक्षमार्ग रूप में समकिती उसे स्वीकार करता है। छठवें गुणस्थानवाले भावलिंगी मुनि, (जिन्हें) आत्मश्रद्धा-ज्ञान और शान्ति प्रगटी है, परन्तु अभी शुभ उपयोग है, ऐसे मुनि, सामने गृहस्थाश्रम में रहनेवाले, दो कषाय के अभाववाले श्रावक को व्यवहार समकित में मध्यम अन्तरात्मा के रूप में स्वीकार करते हैं और गृहस्थाश्रम में अविरत सम्यग्दृष्टि हो, वह भी मोक्षमार्गी है - ऐसा छठवें गुणस्थानवाले शुभोपयोग में व्यवहार समकित में वह भी मोक्षमार्गी है - ऐसा (स्वीकार करते हैं)। छठवेंवाला चौथेवाले को व्यवहार से व्यवहार समकित के विषय में, वह निश्चयमोक्षमार्ग में है - ऐसा स्वीकार करता है। समझ में आया ? पुस्तक ली है या नहीं ?

बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा - यह व्यवहार सम्यग्दर्शन का विषय है। किसे ? अन्तरात्मा को। यहाँ परमात्मा की बात नहीं है, बहिरात्मा की बात नहीं है। अन्तारात्मा सम्यग्दृष्टि, फिर चौथे, पाँचवे, छठवे (हों), सातवे शुद्धोपयोग है (-ऐसे) अन्तरात्मा को शुद्ध सम्यग्दर्शन की प्रतीति और अनुभववाले को (अर्थात्) चौथे, पाँचवे, छठवें

(गुणस्थानवाले को), दूसरे जीव राग को, पुण्य को धर्म माननेवाले ऐसे बहिरात्मा को सम्यग्दृष्टि अंतरात्मा, बहिरात्मा के रूप में व्यवहार समकित में स्वीकार करता है। और चौथे गुणस्थानवाला व्रतरहित हो, अविरति हो तो वे अन्तरात्मा चौथे, पाँचवे, छठवेंवाले उसे मोक्षमार्ग में - शिवमार्ग में चलता है - ऐसा व्यवहार समकित में स्वीकार करते हैं। समझ में आया ? उसकी बात चलती है या नहीं ? भेद की बात चलती है।

अभेद में तो आत्मा की दृष्टि, अनुभव हुआ, निश्चय वह अन्तरात्मा है। उसे फिर किसी को तीन कषाय रहे हों, किसी को दो रहे हों, किसी को एक रहा हो, परन्तु है वह अन्तरात्मा। वह अन्तरात्मा सामनेवाले जीवतत्त्व के तीन प्रकार (स्वीकारता है)। वह व्यवहार में जीवतत्त्व की श्रद्धा करता है न ? किसकी करता है ? अन्तरात्मा निश्चय सम्यग्दृष्टि जीव, उसके व्यवहार में जीव के तीन प्रकार का स्वीकार करता है। यहाँ प्रयोजनभूत की ही बात है, दूसरे अमुक भेद और अमुक भेद की बात यहाँ नहीं है।

सम्यग्दृष्टि जीव-निश्चय सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा, फिर चौथे, पाँचवे, छठवें (गुणस्थानवाला) चाहे जो हो, सामनेवाले जीव की पर्याय के तीन प्रकारों का (स्वीकार करता है)। द्रव्य तो द्रव्य है, परन्तु उसकी पर्याय में एक बहिरात्मा पुण्य को, विकल्प को देह की क्रिया को अपनी मानता है - उसे जीव के एक बहिरात्मा भाग (भेद)के रूप में स्वीकार करता है। यहाँ जीवतत्त्व की बात चलती है या नहीं ? समझ में आया ? और यह अन्तरात्मा दूसरा जो जीव है जो निश्चय सम्यग्दृष्टि है और अन्दर व्रतरहित है; व्रतरहित है, उसे निश्चय अन्तरात्मा, व्यवहार समकित में उसे मध्यम अन्तरात्मा के रूप में दूसरे श्रावक को स्वीकार करता है। जीव के ऐसे तीन भेद में इस प्रकार स्वीकार करता है। बहिरात्मा को बहिरात्मा के रूप में, जघन्य अविरत सम्यग्दृष्टि को शिवमार्गी रूप से - जघन्य अन्तरात्मा रूप से - श्रावकको मध्यम अन्तरात्मारूपसे, शिवमार्गीरूपसे व्यवहार समकितमें स्वीकार करता है और छठवें गुणस्थानवाला था पाँचवे, चौथेवाला अन्तरात्मा, सामनेवाले जीवको छठवें गुणस्थानमें हो उसे मध्यम अन्तरात्मारूपसे जीव के तीन भेदमें से इस भेदवाला स्वीकार करता है। आहा..हा..! समझ में आया ?

मुमुक्षु :- बहिरात्मा को स्वीकार करना ?

उत्तर :- कहा न, बहिरात्मा को स्वीकारता है। राग-द्वेष को 'मेरा' मानता है, यह स्वीकार, उसे स्वीकार करना या नहीं ? निश्चय नहीं, वहाँ व्यवहार कहाँ से आया ? इसके लिए तो यह स्पष्टीकरण चलता है। कहो, समझ में आया इसमें ? आहा..हा..! मूल ज्ञान का ही पूरा विवाद उठा, तत्त्व का ज्ञान।

यहाँ तो 'दौलतरामजी' छहढाला में ऐसा कहते हैं कि जीव के तीन प्रकार के भेद हैं - बहिरात्मा, अन्तरात्मा (और परमात्मा)। अन्तरात्मा के (दो) भेद-मध्यम और उत्कृष्ट। इस मध्यम में छठवे (गुणस्थानवाले), तक लिये हैं और उत्कृष्ट में सातवें से बारहवें (तक) ये सब भेद लिये। जीव की पर्याय के इन भेदों को सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा व्यवहार समकित में इस प्रकार से स्वीकार करता है। आहा..हा..! समझ में आया ?

'यह तीनों मोक्षमार्ग पर चलनेवाले हैं।' ऐसा स्वीकार करता है। छठवें गुणस्थानवाले मुनि अपने आत्मदर्शन के भानसहित शुभ-उपयोग में हो तो उनके व्यवहार समकित में, चौथे गुणस्थानवाले व्रत रहित को भी मोक्षमार्ग में है - ऐसा स्वीकार करते हैं। आहा..हा..! स्वयं मोक्षमार्ग में है (और) इसे मोक्षमार्ग में स्वीकार करते हैं, इसे भी मोक्षमार्ग में स्वीकार करते हैं। भले इसकी हद में तारतम्यता में अन्तर है। समझ में आया ? भाई ! इस 'परमात्मप्रकाश' में नव तत्त्व, छह द्रव्य की व्याख्या व्यवहारमोक्षमार्ग में आयी थी। समझ में आया इसमें ?

दिगम्बर गृहस्थ हो या दिगम्बर मुनि हो, उन्होंने तो परंपरा सनातन वीतरागमार्ग जैसा था, वैसा ही खड़ा रखा है, कुछ परिवर्तन नहीं। अनादि का वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग... यह दिगम्बर श्रावक हो या दिगम्बर मुनि हो, उन्होंने वही मार्ग खड़ा रखा है, किंचित् भी परिवर्तन नहीं होने दिया है। वर्तमान में (तो) बहुत गड़बड़ है।

आहा..हा..! तीनों शिवमगचारी मोक्ष के मार्ग (पर) चलनेवाले हैं। आहा..हा..! छठवें गुणस्थानवाला अन्तरात्मा, चौथे गुणस्थानवाले अन्तरात्मा को - सम्यग्दृष्टि को मोक्षमार्ग में चलनेवाला स्वकार करता है। समझ में आया ? इसीतरह पंचम गुणस्थानवाला श्रावक अन्तरात्मा, चौथे गुणस्थानवाले को मोक्षमार्गी के रूप में स्वीकार करता है। भले ही तारतम्यता में अन्तर है, परन्तु उसे स्वीकार करता है। आहा..हा...! समझ में आया ? चौथे

गुणस्थानवाला अन्तरात्मा, छठवेंवाले को मध्यम अन्तरात्मा के रूप में, जीव की पर्याय के भेद में ऐसी जीव की पर्याय इसकी है - ऐसा वह स्वीकार करता है। समझ में आया ? समझ में आता है या नहीं ? आता है ? अच्छा।

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- अधिक तो भगवान कर सकें, अपने को कितना आता है ? अपने को कुछ आता है ? अपने में जितना हो, उस अनुसार होता है। इसका विस्तार तो अपार है। वस्तु की शक्ति अपार... अपार.. अपार.. (है)। आहा..हा... !

अब, तीसरा भेद सकल निकल। किसका ? जीवतत्त्व का। अन्तरात्मा का हो गया - जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट। समझ में आया ? अब, जीव का तीसरा एक भेद। एक बहिरात्मा; एक अन्तरात्मा और (एक) परमात्मा - यह जीव की पर्याय के भेद हैं। ऐसा व्यवहार सम्यग्दृष्टि जीव उसके विषय में तीसरे सकल परमात्मा और निकल परमात्मा को पररूप से कैसा स्वीकार करता है - इसकी व्याख्या है। समझ में आया ?

'(सकल निकल) सकल और निकल के भेद से परमात्मा के दो प्रकार हैं। उनमें चार घातिकर्मों को नाश करनेवाले लोक तथा अलोक को जानने-देखनेवाले अरहन्त परमेष्ठी शरीरसहित परमात्मा हैं।' लो, क्या कहते हैं ? निश्चय सम्यग्दृष्टि जीव अन्तरात्मा - चौथे, पाँचवे, छठवें गुणस्थानवाला अन्तरात्मा-निश्चय भानवाला, व्यवहार समकित में जीव की एक बहिरात्म पर्याय, एक अन्तरात्म पर्याय, एक परमात्म पर्याय (स्वीकार करता है)। यह पर्याय की बात चलती है या नहीं ? वह अपने व्यवहार समकित के विषय में परमात्मा की पर्याय ऐसी स्वीकार करता है कि एक परमात्मा शरीरसहित हैं, चार घातिकर्मों का नाश हुआ है, केवलज्ञान द्वारा लोकालोक को जानते हैं। है न ? घातिकर्मों का नाश किया है। हुआ है, उसे (नाश किया - ऐसा) निमित्त से कथन किया है। लोक-अलोक को (जानते-देखते हैं)। यह पहले घातिकर्मों से बात की। चार कर्मो का नाश हुआ है, लोकालोक को जानने की शक्ति की व्यक्तता प्रकट हुई है, वे अरिहन्त परमेष्ठी शरीरसहित हैं। कल अर्थात् शरीर। कल अर्थात् शरीरसहित परमात्मा हैं। उन्हें निश्चय सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा जीव, व्यवहार समकित में उन्हें

परमात्मा स्वीकार करता है। वह दूसरे को परमात्मा स्वीकार नहीं करता है। समझ में आया ? आहा..हा... !

एक समय में लोकालोक को जाने। एक सैकेण्ड के असंख्य भाग में परमेश्वर अरिहन्त प्रभु, लोक और अलोक को एक समय में तीन काल- तीन लोक जैसे हैं, वैसे जाने। उन्हें सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा जीव, व्यवहार समकित में, सकल परमात्मा ऐसे होते हैं - ऐसी उनकी प्रतीति व्यवहार समकित में होती है, उसका ज्ञान ऐसा वर्तता है। आहा..हा... ! कहो, भाई ! कितने दिन से कहते थे न कि यह पढो.. पढो। यह बहुत पढ़ा गया। 'परमात्मप्रकाश' में बहुत चला। इसमें समझ में आया ?

'**भावार्थ :- (१) जो निश्चयसम्यग्दर्शन सहित है...**' पाँचवी गाथा का भावार्थ है न ? निश्चय अर्थात् आत्मा का शुद्ध दर्शन, शुद्ध ज्ञान और शुद्ध चारित्र सहित है। '**तीन कषाय रहित...**' है। यह शुद्धोपयोगी मुनि की व्याख्या करते हैं। समझ में आया ? जिसे निश्चयसम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र - आत्मा की श्रद्धा, आत्मा का ज्ञान और आत्मा का चारित्र (प्रकट हुआ है), तीन कषाय रहित है - ऐसा हो उसे तीन कषाय रहित (अवस्था) होती है - ऐसा (कहते हैं)। '**शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार...**' किया है। शुद्ध उपयोगरूप मुनिधर्म है। पंच महाव्रत, अट्ठाइस मूलगुण आदि विकल्प तो आस्रवतत्त्व है। '**शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार...**' किया है। '**अन्तरंग में तो उस शुद्धोपयोग द्वारा स्वयं अपना अनुभव करते हैं...**' समझ में आया ?

'**किसी को इष्ट-अनिष्ट मानकर राग-द्वेष नहीं करते...**' यह ठीक है और यह अटीक है - ऐसा मानकर राग-द्वेष नहीं करते। समझ में आया ? निश्चय सहित है, हाँ ! मुनिधर्म अंगीकार किया है, तथापि वर्तमान में छठवें गुणस्थान में वर्तते हैं - ऐसा कहते हैं... परन्तु शुद्धोपयोग अंगीकार किया है - ऐसा कहा न ? अंगीकार किया है और वह वर्तता है ऐसा। धर्म तो शुद्धोपयोग ही अंगीकार किया था।

अब (कहते हैं) '**हिंसादिरूप अशुभपयोग का तो जिन्हें अस्तित्व ही नहीं रहा है...**' भाई ! शुद्धोपयोग अंगीकार किया था और फिर यहाँ वापस छठवां गुणस्थान लेना है। पहले

मुनिपना अंगीकार करे, तब शुद्धोपयोग (होता है)। पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण तो विकल्प-राग है। शुद्धोपयोग अंगीकार करते हैं, परन्तु जब उसमें स्थिर नहीं हो सकें, उस गुणस्थान की अभी बात करते हैं। उन्हें हिंसादि, झूठ, चोरी, विषय, भोग (ऐसे) अशुभोपयोग का तो अस्तित्व ही जिनके नहीं रहा है। '**ऐसी अन्तरंग अवस्था सहित...**' अन्तरंग अवस्था सहित '**बाह्य दिगम्बर सौम्यमुद्राधारी हुए है...**' बाहर में नग्न दिग्मबर - वस्त्र का धागा नहीं। कैसे ? सौम्यमुद्रा शान्त... शान्त... शान्त... शान्त... उपशमरस के ढाले में ढल गये हैं।

'**छठवें प्रमत्तसंयत्त गुणस्थान के काल में अट्ठाईस मूलगुणों का अखण्डित रूप से पालन करते हैं...**' समझ में आया ? जो मुनि के अट्ठाईस मूलगुण हैं - वस्त्ररहितपना, खड़े-खड़े आहार लेना, एक जगह आहार लेना, अपने लिए बनाये चौके का आहार न लेना... उनके लिए बनाया आहार नहीं लेते - ऐसा उन्हें अट्ठाईस मूलगुण का सही व्यवहार होता है। निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होते हैं, उनके साथ ऐसा सही व्यवहार होता है।

'**वे तथा जो अनन्तानुबन्धी और अप्रत्याख्यानीय - ऐसे दो कषाय के अभाव सहित सम्यग्दृष्टि श्रावक हैं...**' यहाँ मध्यम की बात है न ? समझ में आया ? '**वे मध्यम अन्तरात्मा है।**' छठवें और पाँचवेवाले... '**अर्थात् छठवें और पांचवे गुणस्थान वर्ती जीव मध्यम अन्तरात्मा है।**' समझ में आया ? यह 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा' का आधार दिया है। ऐसे मध्यम अन्तरात्मा को, जैसी उसकी स्थिति है, उस प्रकार अन्तरात्मा सम्यग्दृष्टि, व्यवहार समकित में स्वीकार करता है। ओ..हो..हो... ! 'दौलतरामजी' ने 'छहढाला' हिन्दी में बनाई है, परन्तु इसमें कितना भरा है ! पहले के पण्डित तो बहुत (विचिक्षण थे)। जो परम्परा की रीति, मार्ग था, उसे ही स्वयं ने कहा है। हैं !

मुमुक्षु :- ... अर्थ अलग कर डाले।

उत्तर :- अर्थ अलग कर डाले। बात बदल डाली, क्या हो ? सर्वज्ञ रहे नहीं, देवों की उपस्थिति नहीं, चार ज्ञान आदि पूरा ज्ञान विशेष प्रकट होने की योग्यता नहीं। परिवर्तन हो गया है, परन्तु (जो) यथार्थ है, वह तो यथार्थ ही रहेगा; उसमें कोई परिवर्तन नहीं होगा। उसमें कुछ परिवर्तन होता है ?

'**(२) सम्यग्दर्शन के बिना कभी धर्म का प्रारम्भ नहीं होता...**' आत्मा के शुद्धस्वभाव के अनुभव की दृष्टि – सम्यग्दर्शन के बिना कभी धर्म का प्रारम्भ नहीं होता। यह सम्यग्दर्शन न हो, वहाँ दया, दान, व्रत के चाहे जितने परिणाम हों तो वे सब बन्ध के भाव में (है, वे) मोक्षमार्ग में है नहीं। समझ में आया ?'**जिसे निश्चयसम्यग्दर्शन नहीं है, वह जीव बहिरात्मा है।**' वह तो पुण्य और पाप को अपना मानता है। जो विभाव है, उसे स्वभाव मानता है और जड़ की क्रिया है, वह आत्मद्रव्य की है – ऐसा मानता है। समझ में आया ? ऐसा बहिरात्मा है। उसे बहिरात्मा के रूप में सम्यग्दृष्टि स्वीकार करता है।

'**परमात्मा के दो प्रकार हैं - सकल और निकल। (१) श्री अरिहन्त परमात्मा सकल (शरीरसहित)...**' कल अर्थात् शरीर... '**परमात्मा हैं।**' देखो ! अन्तरात्मा सम्यग्दृष्टि, परमात्मा शरीरसहित हों, उन्हें व्यवहार समकित में स्वीकार करता है। तब शरीरसहित परमात्मा अभी कहीं है या नहीं ? पाँचवें काल का सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा जीव, व्यवहार समकित में शरीरसहित परमात्मा को, परमात्मा को जीव की पर्याय उत्कृष्ट परिणमी है – ऐसे व्यवहार समकित में स्वीकार करता है। तब शरीरसहित परमात्मा को अन्तरात्मा स्वीकार करता है तो शरीरसहित परमात्मा कही है या नहीं ? समझ में आया ? महाविदेहक्षेत्र में केवली भगवान 'सीमन्धर प्रभु' बिराजमान हैं, वे सकल परमात्मा – शरीरसहित परमात्मा हैं। ऐसा अन्तरात्मा सम्यग्दृष्टि जीव, व्यवहार समकित में सकल-शरीरसहित परमात्मा बिराजमान हैं (– ऐसा स्वीकार करता है।) क्योंकि शरीरसहित हैं, वे मुक्ति में नहीं है। शरीरसहित है तो मुक्ति में नहीं है तो कहीं होंगे या नहीं ? तो महावदेह में है – ऐसा समकिती है, (वह) स्वीकार करता है। समझ में आया ? आहा..हा... ! यह एकबार मध्यस्थ होकर पढ़े तो इसे पता चले। यह 'छहढाला' पढ़कर बहुत छापी होगी।

मुमुक्षु :– ...

उत्तर :– अब यहाँ सुनने आये न ! मुख्य तो यह लाभ का कारण है, वह तो ठीक अब। कहो, इसमें समझ में आया ?

'**अरिहन्त परमात्मा सकल (शरीरसहित) परमात्मा हैं...**' वे हैं – ऐसा इस पर वजन

आया न ? वे हैं, उन्हें सम्यग्दृष्टि जीव, व्यवहार समकित में, शरीरसहित परमात्मा किसी क्षेत्र में है, उन्हें वह स्वयं वर्तमान में भी मानता है। कहो, ठीक है या नहीं ?

अब, '**(२) सिद्ध परमात्मा...**' यह अभी आया नहीं, परन्तु इसका स्पष्टीकरण बाद में करेंगे। अब बाद में आयेगा। '**सिद्ध परमात्मा, वे निकल परमात्मा हैं।**' यह बाद की गाथा में आयेगा। समझ में आया ? '**ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्म-मल, वर्जित सिद्ध महंता;...**' (चलती गाथा में) शब्द पड़ा है, कौन है - इसकी व्याख्या नहीं। यह तो मात्र निकल शब्द पड़ा है न, इतनी व्याख्या (की है)। निकल शब्द पड़ा है, उसकी व्याख्या की है। निकल की व्याख्या छठवें (श्लोक) के मूल पाठ में आयेगी।

निकल अर्थात् शरीररहित परमात्मा... तो कही है या नहीं ? शरीररहित परमात्मा, आठ कर्मों का नाश है और पूर्ण लोकालोक को जानते हैं। समझ में आया ? महंता है, वे पूज्य हैं। अर्थ में महान करेंगे, दूसरे में पूज्य लिखा है। महापूज्य हैं - ऐसे सिद्ध परमात्मा शरीररहित त्रिकाल ज्ञानी हैं। शरीररहित हैं और त्रिकाल (का) ज्ञान है। कर्म का कोई सम्बन्ध नहीं और तीन काल - तीन लोक का - लोकालोक का जिन्हें ज्ञान वर्तता है। ऊपर कहा है तो इसमें (भी) आ गया। समझ में आया ?

ऐसे शरीररहित परमात्मा, '**वे दोनों सर्वज्ञ होने से लोक और अलोक सहित सर्व पदार्थों का त्रिकालवर्ती...**' सर्व पदार्थों का त्रिकाल में वर्तनेवाला '**सम्पूर्ण स्वरूप एक समय में युगपत् (एकसाथ) जानने-देखनेवाले सबके ज्ञाता-दृष्टा हैं।**' ऐसा सम्यग्दृष्टि - निश्चय सम्यग्दृष्टि, व्यवहार समकित में, परमात्मा ऐसे हैं (- यह स्वीकार करता है)। दो प्रकार के - सकल (और) निकल। शरीरसहित केवलज्ञानी और एक शरीररहित केवलज्ञानी। वे तीन काल-तीन लोक को एक समय में पूर्ण यथार्थ जानते हैं। उसमें कुछ आगे-पीछे (जानते नहीं)। एक समय में जानना, उसमें आगे-पीछे कहाँ आया ? समझ में आया ?

केवलज्ञान जो-जो देखी वीतराग ने, सो-सो होसी वीरा रे - जो-जो सर्वज्ञ ने देखा, तदनुसार होगा - ऐसे सर्वज्ञ को, अन्तरात्मा, सकल परमात्मा और निकल परमात्मा - जीव की ये दो प्रकार की परमात्मा की पर्याय (जानता है)। अन्तरात्मा और बहिरात्मा की पर्याय

हुई। परमात्मा की पर्याय को व्यवहार समकित में, उस पर्याय को, जीव की पर्याय ऐसी होती है, जीव की पर्याय ऐसी और इतनी बड़ी होती है, उसे व्यवहार समकित में, निश्चय समकिती स्वीकार करता है। आहा..हा... ! समझ में आया ?

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- परद्रव्य है न ? व्यवहार नहीं। निश्चय है, इसलिए व्यवहार है। वह परद्रव्य है न ? वह कहाँ स्वद्रव्य हैं ? परद्रव्याश्रित व्यवहार, स्वद्रव्याश्रित निश्चय-यह सिद्धान्त है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा अपने शुद्धस्वरूप के आश्रय से दृष्टि करे, वह निश्चय, उसमें जो नव तत्त्व के भेदवाला (ज्ञान करे), उसमें यहाँ तो जीव के तीन प्रकार की पर्यायवाले (जीवतत्त्व की बात चलती है)। उसमें भी परमात्म पर्याय के दो प्रकार हैं - ऐसी पर्यायवाले जीव की पर्याय - ऐसा स्वीकार करता है। अर्थात् व्यवहार समकित में उसका स्वीकार आता है। आहा..हा... ! भगवान आत्मा को एक समय की पर्याय में सब क्रमबद्ध जानता है। ऐसी-ऐसी अनन्त पर्यायों का एक गुण है, ऐसे-ऐसे अनन्त गुणों का एक द्रव्य है। इसलिए सारा द्रव्य भी क्रमबद्ध को जानने की शक्तिवाला; गुण भी क्रमबद्ध को (जानने की शक्तिवाला) और पर्याय भी क्रमबद्ध को (जानने की शक्तिवाली है)। ऐसा पूरा द्रव्य प्रतीति में लिया, वह तो निश्चय (समकित) है। उसकी यह एक-एक समय की परमात्मा की पर्याय को श्रद्धा में ली, उसे व्यवहार (कहते हैं)। समझ में आया ?

'सर्व पदार्थों का त्रिकालवर्ती सम्पूर्ण स्वरूप एक समय में...' भगवान ज्ञान में (जानते हैं)। अनन्त काल में कौनसी अवस्था होगी - यह भगवान के ज्ञान में अभी आ गयी है; अनन्त काल पहले हो गयी, वह भगवान के ज्ञान में अभी आ गयी है। भगवान के ज्ञान में ऐसा नहीं है कि वहाँ ऐसा संयोग आयेगा तो ऐसी होगी और दूसरा संयोग आयेगा तो ऐसी होगी। ऐसा भगवान के ज्ञान में नहीं होता। समझ में आया ?

भगवान अरिहन्त और सर्वज्ञ सिद्ध - दोनों सर्वज्ञ। एक सर्व-ज्ञ- सर्वज्ञ हुआ न ? सर्वज्ञ कहा न ? सर्व-ज्ञ... लोकालोक सब को जाना। सबको जाना तो एक समय में न ? एक समय

में सैकेण्ड के असंख्य भाग में। सर्वज्ञ - ऐसा सब एक समय में जानते हैं। उसमें यह यहाँ होगा, तब ऐसा होगा और ऐसा होगा - ऐसा कुछ उसमें है नहीं। समझ में आया ? सर्वज्ञ - ऐसा कहा न ? लोकालोक को जानते हैं - यह बात तो पहले आ गयी। '**सकल परमात्मा, लोकालोक निहारी -**' ऐसा शब्द पड़ा है न ? क्या कहा ? '**लोकालोक निहारी-**' जानने-देखनेवाले। निहारी का अर्थ देखनेवाले, निहारनेवाले। लोकालोक को निहारनेवाले (हैं)। सकल या निकल परमात्मा, अहिन्त या सिद्ध लोकालोक को निहारनेवाले, निहारनेवाले हैं। लोकालोक को एक समय में निहारते हैं। निहारने में जानना-देखना दोनों (आ गये) समझ में आया ? देखो न ! यह भाषा प्रयोग की है। समझ में आया ?

एक सैकेण्ड के असंख्यात् भाग में केवली परमात्मा अरिहन्त भगवान बिराजमान हैं या सिद्ध भगवान, एक सैकेण्ड के असंख्यातवें भाग में तीन लोक - तीन कालवर्ती सर्वज्ञ एक समय में - निहारी - देखते जानते हैं। यहाँ देखते-जानते हैं। वस्तुतः तो उनकी पर्याय देखती-जानती है, इतनी ही वह पर्याय है। आहा..हा..! समझ में आया ? उसमें आगे-पीछे किस प्रकार हो ? ऐसा तो सम्यग्दृष्टि जीव-निश्चय सम्यग्दृष्टि जीव, व्यवहार समकित में सकल-निकल परमात्मा को लोकालोग को एक साथ एक समय में देखनेवाले को इस प्रकार जाने, उसे व्यवहार समकित का विषय कहा जाता है। वहाँ पूर्ण आपत्ति हो, उसे निश्चय का भान नहीं हो सकता। आहा..हा...! कठिन बात है। कहो, इसमें समझ में आया या नहीं ?

मुमुक्षु :- बड़ा...

उत्तर :- बड़ा कहाँ है ? उसकी एक समय की पर्याय की ऐसी (ताकत है), जानने को, व्यवहार ज्ञान के जानने की ऐसी ताकत है। वह श्रद्धा की पर्याय नहीं है। साथ में विकल्प है, परन्तु वह ज्ञान का इस सम्बन्धी का पर को जानने की एक समय की पर्याय का विकल्प सहित की पर्याय की इतनी ताकत है। समझ में आया ? आहा..हा...! एक समय में भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द निर्विकल्प, वह तो पूरा द्रव्य, अनन्त पर्याय का गुण और अनन्त गुणों का एकरस महान आत्मा एक अभेद वस्तु-एकाकार वस्तु है, जिसमें अनन्त गुण का भेद, जिसमें अनन्त पर्याय का भेद (होने पर) भी वह वस्तु अभेद है। उसकी एकपने की एकाग्रता से श्रद्धा... एकाग्रता कहो या एक में अग्र कहों। एकाग्रता - एक स्वरूप में अग्र होकर, मुख्य

रखकर अनुभव हुआ, उसे निश्चयसम्यग्दर्शन कहते हैं। अब सामने जो व्यवहार है, उसमें एकपना नहीं वहाँ अनेकपना है। भाई ! उसमें जीव के तीन प्रकार वर्णन किये हैं। व्यवहार समकित के विषय में जीव की पर्याय के (तीन प्रकार वर्णन किये) - एक बहिरात्म पर्याय; अन्तरात्म पर्याय के भेद - जघन्य-मध्यम-उत्कृष्ट। जघन्य पर्याय चौथे से, मध्यम पाँचवे-छठवे की, उत्कृष्ट सातवें से बारहवें(तक)। इस पर्याय का इस प्रकार से उसका ज्ञान - परलक्ष्यी ज्ञान (होता है), उसे श्रद्धा क्यों कहा ? श्रद्धा व्यवहार; वरना वह श्रद्धागुण की पर्याय नहीं है, वह तो ज्ञान का उघाड़ है और विकल्प पर्याय है। ऐसी दो बात है। परलक्ष्यी ज्ञान का उघाड़ है और एक प्रकार के विकल्प का भाग है, उसे व्यवहार समकित कहते हैं। नहीं उसे (कहते हैं)। ऐसी एक निमित्तता पर्याय की ताकत में ऐसा जानना (होता है)। इतनी ताकत है, इस कारण उसे व्यवहार कहा गया है। द्रव्य की श्रद्धा की ताकत महान... कि जिसके गुण में अनन्त केवलज्ञान पड़ा है, अनन्त यथाख्यातचारित्र-पूर्ण चारित्र जिसके चारित्रगुण में पड़ा है - ऐसे अनन्त गुण को एकरूप से प्रतीति (की), वह तो निश्चय वस्तु हो गयी। समझ में आया ? आहा..हा..!

यह जीव की पर्याय के भेद - बहिरात्मा, अन्तरात्मा यह पर्याय कही न ? जीव की पर्यायें। वह (जीव) तो द्रव्यस्वरूप से है, उसकी यह पर्यायें। बहिरात्मा - शरीर से आत्मा एक है कहो या राग से एक है - ऐसा माननेवाले जीव की एक बहिरात्म पर्याय है। उसे व्यवहार समकित में उसका ज्ञान ऐसा स्वीकार है। परलक्ष्यी ज्ञान वह आत्मज्ञान नहीं, भाई ! वह ऐसा (बहिर्मुख) ज्ञान है। आत्मज्ञान यहाँ का ऐसा (अन्तर्मुख) ज्ञान है। अन्तरात्मा चौथेवाला, पाँचवेवाला मध्यम, छठवेवाला मध्यम, चौथेवाला जघन्य; सात से (बारहवे तक) उत्तम - उन्हें उस प्रकार से स्वीकार करता है। ज्ञान का भाग - क्षयोपशम उस प्रकार स्वीकार करता है। परमात्मा - शरीरसहित केवलज्ञानी, लोकालोक को निहारनेवाले ऐसे भी हैं; शरीररहित परमात्मा (भी) लोकालोक को निहारनेवाले हैं। शरीर गया, इसलिए केवलज्ञान चला गया - ऐसा नहीं है। यह शरीर और इन्द्रियाँ क्या जानते हैं ? वह शरीर, इन्द्रियों के बिना लोकालोक को जानते हैं। यहाँ केवलज्ञान में लोकालोक को शरीर, इन्द्रिय बिना जानते हैं। मात्र-चार अघातिकर्मों को निमित्तपना बाकी है, इसलिए उनकी पर्याय में,

दूसरी पर्याय में निर्मलता कम है। यह पर्याय तो पूर्ण है। ज्ञान, दर्शन की पर्याय पूर्ण है। समझ में आया ? ऐसे शरीरसहित परमात्मा, शरीररहित पमरात्मा लोकालोक को निहारनेवाले, एक समय में निहारनेवाले... उसमें समयभेद नहीं है। एक समय में (जानते हैं) इसलिए आगे-पीछे कुछ नहीं हो सकता। एक समय में पूरा, एक समय में पूरा... पूरे में अब क्या कहना ? पूरा अर्थात् जैसे ऐसा पड़ा है, पूरा लोकालोक पर्याय सहित जैसा है, वैसा एक समय में जानते हैं। ऐसे परमात्मा को अन्तरात्मा, व्यवहार समकित के विषय में, उसके ज्ञान के उघाड़ में - परलक्ष्यी उघाड़ में - विकल्पसहित में ऐसा जानते हैं। आहा..हा...! समझ में आया ? यह पुस्तक तो तुम्हारे हाथ में है, है या नहीं लड़कों ? कौन है यह ? है या नहीं इसमें ? लड़कों को भी तैयार होना पड़ेगा या नहीं ? यह सब वृद्ध तो एक के बाद एक चले जायेंगे। आहा..हा...!

अद्‌भुत वर्णन किया है, हाँ ! यह विस्तार तो व्याख्यान के समय होता है, पढते समय इतना सब स्पष्ट नहीं होता। हमारे तो 'हीराजी महाराज' कहते थे, तू अकेला बैठकर पढ़ता है, तू कहे, मेरे पढ़ना नहीं, मुझे व्याख्यान नहीं करना... परन्तु ऐसा रहने दे। 'हीराजी महाराज' बेचारे बहुत भद्र थे। तू पढ़ - तुझे पढ़ते-पढ़ते खिलेगा, ख्याल आयेगा - ऐसा कहते थे। बहुत भद्र थे, वस्तु (वस्तुस्वरूप) का पता नहीं, (था)। एक ओर बैठे-बैठे मेरा करूँ मेरा करूँ - ऐसा रहने दे। तू पढ़, लोग बहुत चाहते हैं। यह पढ़ते-पढ़ते ख्याल आयेगा, तर्क खिलेंगे, ऐसा होगा (-ऐसा कहते थे)। ऐ..ई..! अपनी एकाग्रता है या नहीं ? इसलिए जब समझाना होता है न, तब उसकी स्पष्टता ख्याल में अधिक आती है, ऐसा। स्पष्टता अधिक आती है। अकेला समझना हो तो उसे क्या इतनी बात है।

'**सम्पूर्ण स्वरूप एक समय में...**' एक समय में। एक समय होता है न ? केवली को एक समय है। '**युगपत् (एकसाथ) जानने-देखनेवाले सबके ज्ञाता-दृष्टा हैं; इससे निश्चित् होता है कि जिस प्रकार सर्वज्ञ का ज्ञान व्यवस्थित हैं...**' व्यवस्थित अर्थात् एक समय है, एक समय में सब एकसाथ जानते हैं। '**उसी प्रकार उनके ज्ञान के ज्ञेय-सर्व द्रव्य छहों द्रव्यों की त्रैकालिक क्रमबद्ध पर्यायें निश्चित - व्यवस्थित है...**' पर्याय व्यवस्थित... एक समय में सब जाने तो वहाँ भी सब (व्यवस्थित) है। एक समय में जानते हैं, एक समय में पूरा जानते

हैं, उसमें पूरा अर्थात् सम्पूर्ण; उसमें उल्टा-सीधा रहा कहाँ ? हो भी कैसे ? यहाँ एक समय में पूरा ऐसा (जानते हैं)। यहाँ एक समय में पूरा (ज्ञान), एक समय में ज्ञेय पूरा, बस ! ऐसा है। उसमें फिर यहाँ होगा और यहाँ नहीं होगा - इस बात की - शंका का स्थान भी कहाँ है ? जगत को बहुत कठिन (पड़ता है)।

मुमुक्षु :- ... पास जाए तो अच्छा हो जाता है।

उत्तर :- अरे.. ! मर जाए। कहो, समझ में आया ?

'और कोई पर्याय उलटी-सीधी अथवा अव्यवस्थि नहीं होती - ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव मानता है...' एक समय का ज्ञान, एक समय की पूरी अवस्था, एक समय की पूर्व वर्तमान, ऐसा। भूत भी है, परन्तु वर्तमान योग्यता है न द्रव्य में ? सम्पूर्ण लोकालोक को केवलज्ञान एक समय में जाने तो पूरे लोकालोक में एक समय में निमित्त होने की ताकत है या नहीं ? वर्तमान, हाँ ! केवली को यहाँ एक समयकी पूर्ण पर्याय प्रकट हुई तो एक समय में लोकालोक निमित्त है या नहीं ? या भविष्य में होगा, वह निमित्त भविष्य में होगा, यहाँ एक समय की पर्याय में लोकालोक एक समय में निमित्त है, बस ! पूरा हो गया, समाप्त हो गया। समझ में आया ? वर्तमान पूरा निमित्त है या (नहीं) ? वर्तमान का निमित्त है और भूत-भविष्य का होगा, तब निमित्त होगा ? समझ में आया ? भगवान के ज्ञान में एक समय में वर्तमान लोकालोक निमित्त है, बस ! हो गया। यहाँ पूरा और वहाँ भी पूरा। पूरा हो गया। समझ में आया ?

'जिसे ऐसी मान्यता (-निर्णय) नहीं होती, उसे स्व-पर पदार्थों का निश्चय न होने से...' वहाँ कर्ताबुद्धि है न ? जानना ही है, यहाँ जानना ही है, उसे जानना ही है। जैसा है, वैसा जानना। यहाँ भी जैसा है, वैसा जानना है; करना है या बदलना है - ऐसा कुछ है नहीं। **'पदार्थ का निश्चय न होने से शुभाशुभ विकार और परद्रव्य के साथ कर्ताबुद्धि एकताबुद्धि होती है...'** उसे होती ही है। सर्वज्ञ का जानने का ऐसा स्वभाव है, इसके अतिरिक्त दूसरा स्वभाव नहीं होता - ऐसा नहीं माननेवाले को शुभाशुभ विकार की एकताबुद्धि होती ही है। **'इसलिए वह जीव बहिरात्मा ही है।'** उसे सम्यग्दृष्टि इस प्रकार से स्वीकार करता है। उस व्यवहार समकित अथवा पर सम्बन्धी के ज्ञान के क्षयोपशम की ऐसी मर्यादा ही है। विशेष कहेंगे...

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)